उपयोगितावाद,
लोककल्याणकारी सिद्धान्त,
और व्यवस्थाओं की बहस

19वीं शताब्दी के अन्त में सीमान्तवादी सिद्धान्त मज़बूत हुआ और इसका कई प्रकार से विस्तार हुआ। यह विशेषकर उपयोगितावाद के विभिन्न रूपों में फैला जो सीमान्तवाद की बुनियाद में है और साथ ही, लोककल्याणकारी सिद्धान्त के विकास में भी शामिल रहा। "अधिकतम लोगों को अधिकतम खुशी" (फ्रांसिस हटसन, जेरेमी बेंथम) या किसी समाज के सदस्यों की जरूरतों की "अधिकतम सन्तुष्टि" (मार्शल) के विचार लम्बे समय से अर्थशास्त्रियों के बीच विचार-विमर्श के विषय बने हुए थे। इसे एक बार फिर से उठाया गया और इसका सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त उत्पादकता के आधार पर नए सिद्धान्त के भीतर विश्लेषण किया गया। लगभग उसी समय ज़मीन पर समाजवादी आंदोलन ने गति पकड़ी और पूँजीवाद को चुनौती दी और सोवियत संघ की स्थापना के साथ इसका स्पष्ट से रूप से दिखाई देनेवाला विकल्प भी आ गया। परिणाम स्वरूप, एक बहस छिड़ गई कि कौन-सी आर्थिक व्यवस्था श्रेष्ठ थी: पूँजीवाद या समाजवाद? लेकिन हम पहले सीमान्त के सिद्धान्त के विकास के विषय में बात करते हैं और फिर दो व्यवस्थाओं के बारे में बहस की ओर मुड़ते हैं।

फ्रांसिस सिडेरो एजवर्थ - जबसे जेरेमी बेंथम (1748 -1832) ने इस अवधारणा को प्रस्तुत किया तब से उपयोगितावाद कुछ अर्थशास्त्रियों के ध्यान के केन्द्र में रहा था। एजवर्थ (1845-1926) का लक्ष्य उपयोगितावाद को एक ठोस और सटीक रूप देना था; विशेष रूप से उनकी दो पुस्तकें देखें- *न्यू एण्ड ओल्ड मेथड्स ऑफ एथिक्स (1877) और मैथमेटिकल साइकिक्स: एन एसे ऑन द एप्लीकेशन ऑफ मैथमेटिक्स टू द मोरल साइन्स (1881)*। हालांकि एजवर्थ ने यह स्वीकार किया कि ठीक-ठीक कहे तो उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता है और उसकी अन्तर्वैयक्तिक आधार पर पारस्परिक तुलना नहीं की जा सकती है लेकिन उन्होंने महसूस किया कि व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए यह माना जा सकता है कि ऐसा हो सकता है। उन्होंने यहाँ जर्मन मनोवैज्ञानिक गुस्ताव फेचनर (1801-1887) की इस खोज को आरोपित किया कि एक व्यक्ति को प्राप्त होने वाली आय और सीमान्त उपयोगिता के बीच सम्बन्ध के प्रति किसी ऐन्द्रिक उद्दीपन की धारणा की तीव्रता बढ़ने के साथ ही उसकी समानुपातिक रूप से बढ़ोतरी कम होने लगती है। इसका परिणाम आय की ह्रासमान सीमान्त

उपयोगिता का नियम था: एक निश्चित बिन्दु से आगे की आय जितनी अधिक होगी, मुद्रा की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से उपयोगिता में उतनी ही कम वृद्धि होगी।

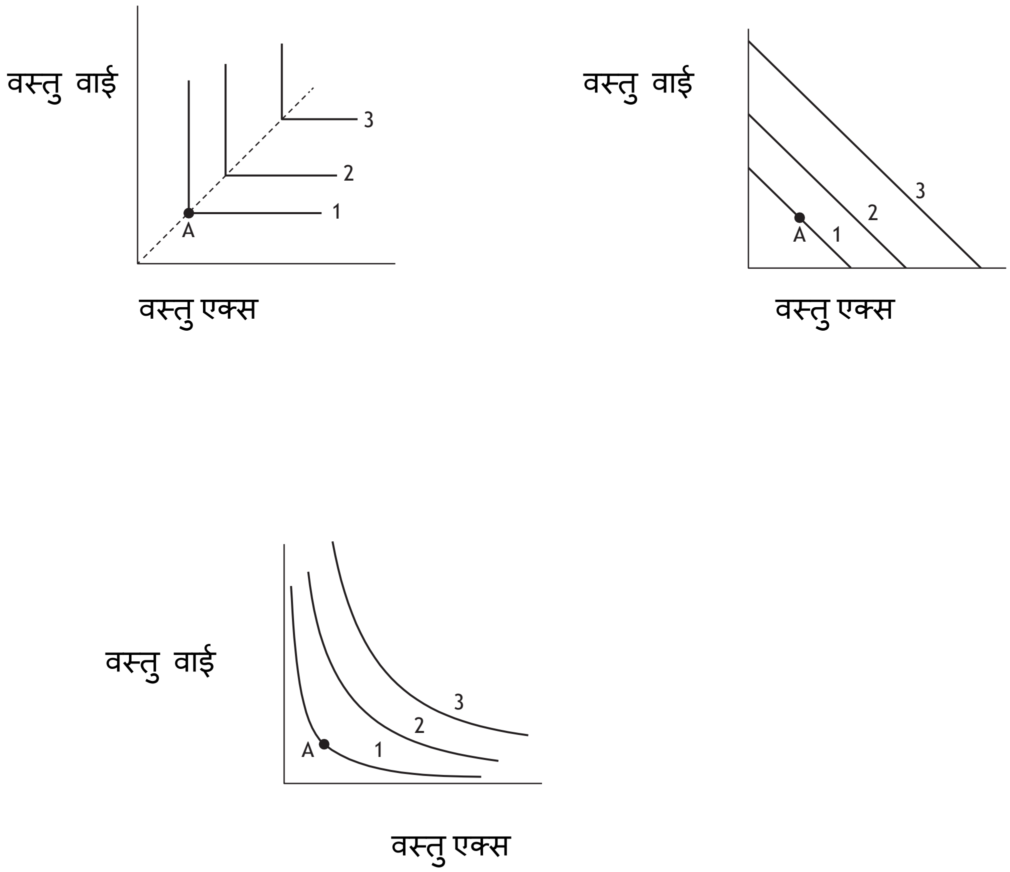
एजवर्थ ने गणनावाचक उपयोगिता की संगत अवधारणा की वकालत की जिसका अर्थ केवल यह नहीं था कि उपभोक्ता यह तय करने में सक्षम है कि क्या माल के एक बण्डल की, दूसरे की तुलना में अधिक उपयोगिता है, बल्कि यह भी है कि यह उपयोगिता कितनी अधिक है। एजवर्थ के 'सटीक या ठोस उपयोगितावाद' का अर्थ है कि व्यक्तियों के बीच उपयोगिता की समान धारणाओं के मामले में आय का अधिक समान वितरण समग्र रूप से समाज के कल्याण को बढ़ाता है: अमीरों के लिए आय की सीमान्त उपयोगिता कम है, गरीबों के लिए अधिक है और इसलिए गरीबों के पक्ष में आय पुनर्वितरण से कुल उपयोगिता में वृद्धि हो सकती है।

गोसेन और जेवांस के विपरीत एजवर्थ ने तथाकथित योगात्मक उपयोगिता फलन को स्वीकार नहीं किया: इसके बजाय उन्होंने यह कहा कि किसी वस्तु की खपत की मात्रा का अन्य वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता पर प्रभाव पड़ता है। राउ और ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्री रुडोल्फ ऑस्पिटज़ (1837-1906) और रिचर्ड लिबेन (1842-1919) ने बाद में 'पूरक' और 'स्थानापन्न' वस्तुओं के बीच अन्तर किया। पूरक वस्तुओं का उपयोग केवल एक साथ किया जा सकता है जैसे कार और ईंधन या पाइप और तम्बाकू। स्थानापन्न वस्तुएँ- वे वस्तुएँ हैं जो एक- दूसरे की जगह ले सकती हैं जैसे, चावल और आलू या फाउंटेन पेन और बॉल पॉइंट पेन। एक पूरक वस्तु की कीमत में वृद्धि (बाकी सब एक-सा होने पर) के परिणाम स्वरुप अन्य वस्तु की माँग में भी कमी आएगी, और उसी तरह मूल्य में कमी के परिणाम स्वरुप दोनों वस्तुओं की माँग में वृद्धि होगी। किसी स्थानापन्न वस्तु के लिए यह विपरीत है; एक की कीमत में वृद्धि से दूसरी वस्तु की माँग में वृद्धि होगी और कीमत में कमी से दूसरी वस्तु की माँग में कमी आएगी। इसे अधिक तकनीकी शब्दों में कहे तो यदि दो वस्तुओं में से एक की थोड़ी अतिरिक्त मात्रा के उपभोग से दूसरी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता बढ़ जाती है तो हम पूरक वस्तुओं के साथ व्यवहार कर रहे हैं; यदि यह सीमान्त उपयोगिता को कम करता है तो वह स्थानापन्न वस्तुएँ हैं। इस नियमन में अन्तर्निहित है "मूल्य की क्रास नम्यता या लोच" की अवधारणा जो एक वस्तु की माँग में सापेक्ष परिवर्तन का सम्बन्ध दूसरे वस्तु की कीमत में सापेक्ष परिवर्तन से रखता है। यह इस प्रश्न का उत्तर देता है: किसी एक्स वस्तु की माँग कितने प्रतिशत तक बदल जाती है जब किसी वाई वस्तु की कीमत 1% तक बढ़ जाती है जबकि बाकी सभी चीजें एक सी रहती हैं। जैसा कि हमने कहा है कि यदि एक्स वस्तु की माँग गिर जाती है तो हमारे पास पूरक वस्तुएँ हैं, और यदि यह बढ़ जाती है तो

यह स्थानापन्न वस्तुएँ हैं। माँग में प्रतिशत परिवर्तन का परिमाण विचाराधीन दो वस्तुओं के बीच पूरकता या स्थानापन्न योग्यता के स्तर के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

एजवर्थ 'उदासीनता वक्र' की अवधारणा को प्रस्तुत करने वाले पहले अर्थशास्त्री थे, जो दो वस्तुओं की मात्राओं के उन सभी संयोजनों के बाबत है जो व्यक्ति के लिए समान रूप से अधिक उपयोगिता वाले हैं। एक्स अक्ष पर उपभोग किए गए एक्स वस्तु की मात्रा और वाई अक्ष पर वाई वस्तु की उपभोग की गई मात्रा के साथ एक आरेख बनाने पर, पूरक वस्तुएँ पूरी तरह से उदासीनता वक्र पर परिलक्षित होती हैं जो कि' L ' की तरह दिखता है और यह दो वस्तुओं के इष्टतम संयोजन को दिखाता है और जो 'L' के कोने में दिया गया है (चित्र 6.1 A)। वहाँ से शुरू करके, दो वस्तुओं में से किसी एक की मात्रा को थोड़ा-सा बढ़ाने पर और दूसरे की मात्रा को स्थिर रखने से उपयोगिता में वृद्धि (या कमी) नहीं होती है। इसलिए उदासीनता वक्र 'L' के कोने के बाएँ और दाएँ तरफ दो अक्षों में से प्रत्येक के समानान्तर है। स्थानापन्न वस्तुओं के मामले में, उदासीनता वक्र नीचे की ओर झुका हुआ होता है। चरम में, यह एक सीधी रेखा है, जिसका अर्थ है कि 2 वस्तुएँ पूर्ण स्थानापन्न हैं (चित्र 6.1 B)। यदि उदासीनता वक्र का आकार न तो एल आकार में है और ना ही सीधी रेखा के समान तो इसका अर्थ है कि दोनों वस्तुएँ एक दूसरे के लिए कम या ज्यादा आसानी से प्रतिस्थापित की जा सकती हैं (चित्र 6.1C)। जिस आसानी या कठिनाई के साथ उन्हें प्रतिस्थापित किया जा सकता है वह निश्चित रूप से उदासीनता वक्र के उस बिन्दु पर निर्भर करता है जिस पर स्थानापन्न होना चाहिए। जितना अधिक एक वस्तु (उदाहरण के लिए, वाई) पहले से ही अन्य वस्तु एक्स को प्रतिस्थापित कर चुकी है, समग्र उपयोगिता स्तर को देखते हुए, एक्स वस्तु को वाई वस्तु द्वारा प्रतिस्थापित करना उतना ही कठिन हो जाता है, अर्थात, एक्स वस्तु की खपत मात्रा में कमी की भरपाई के लिए वाई वस्तु की एक बड़ी अतिरिक्त राशि उपलब्ध कराई जानी चाहिए। यह देखने के लिए चित्र 6.1 C में बिन्दु ए तथा बी पर उदासीनता वक्र के ढलानों की तुलना करें। दूसरे शब्दों में कहे तो वस्तु वाई के लिए वस्तु एक्स को प्रस्थापित करना हमेशा महंगा पड़ता है जिसके कारण उपभोक्ता के लिए उपयोगिता का स्तर अप्रभावित रहता है।। इसे वस्तु एक्स के लिए वस्तु वाई के प्रतिस्थापन की गिरती सीमान्त दर के रूप में जाना जाता है।

विल्फ्रेडो परेतो - परेतो ने गणनावाचक उपयोगिता की अवधारणा को खारिज कर दिया और इसे क्रम सूचक उपयोगिता की अवधारणा के साथ बदल दिया: हालांकि कोई कह सकता है कि माल का एक बण्डल दूसरे की तुलना में पसन्द किया जाता है या उससे कमतर है लेकिन कोई यह नहीं कह सकता कि कितना?



चित्र 6.1 उदासीनता वक्र: पूरक और विकल्प

साथ ही, उपयोगिता की तुलना व्यक्तियों के बीच और पूर्ण योग से नहीं की जा सकती। इस नज़रिए से देखा जाए तो न तो आय की घटती सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा और न ही समग्र रूप से समाज की सामूहिक उपयोगिता की अवधारणा कोई अर्थ रखती है। पारम्परिक उपयोगितावादी विचारों से अपने विचारों के फ़र्क को साफ़ करने के लिए परेतो ने उपयोगिता की अवधारणा को ऑफेलिमिटी यानी आर्थिक सन्तुष्टि के साथ बदल दिया।

लेकिन, जैसाकि पेश किया गया- क्या उपयोगिता सिद्धान्त की क्रमिक क्रान्ति, माँग के सीमान्तवादी सिद्धान्त को अमान्य कर देती है? परेतो के अनुसार किसी भी तरह से नहीं। परेतो की राय में क्रमिक उपयोगिता की अवधारणा के बिना काम चल सकता है और इसके बजाय किसी व्यक्ति के लिए उदासीनता वक्रों के एक बण्डल पर विचार करना चाहिए। इससे यह सम्भव है कि दी गई आय और दी गई कीमतों पर व्यक्ति की पसन्द के साथ-साथ उसकी माल या वस्तुओं की माँग का भी पता चल सकता है।

शुद्ध विनिमय के मामले पर चर्चा करते हुए परेतो ने एक ग्राफिकल साधन या युक्ति की खोज की जिसे कथित रूप से एजवर्थ बाक्स कहते हैं और जिसका ग़लत तरीके से श्रेय एजवर्थ को दे दिया जाता है।

उदाहरण के लिए, दो व्यक्तियों को लीजिए दोनों को शुरू में दो वस्तुओं के लिए धनराशि दी गई थी। परेतो का प्रश्न था: क्या यह सम्भव है कि उस धनराशि के एक हिस्से का इस तरह से आदान-प्रदान किया जाए जो दोनों के लिए इस अर्थ में पारस्परिक रूप से लाभकारी हो कि यह प्रत्येक व्यक्ति को प्रारम्भिक धनराशि के उपभोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिता के स्तर से अधिक उपयोगिता देती हो? दूसरे शब्दों में कहें तो क्या शुद्ध विनिमय या व्यापार से लाभ (उपयोगिता) है? परेतो ने दिखाया कि सामान्य तौर पर, दो वस्तुओं के कई विनिमय सन्तुलन और तदनुसार मूल्य अनुपात होते हैं, एक ऐसी स्थिति से लेकर विपरीत स्थिति तक जिसमें विनिमय का पूरा लाभ किसी एक व्यक्ति को होता है। बीच में सन्तुलन की एक श्रृंखला है जिसमें दोनों को फायदा है; ऐसे सभी सन्तुलन 'अनुबन्ध वक्र' पर होते हैं। यह वक्र उन बिन्दुओं को चिन्हित करता है, जिन पर एक व्यक्ति केवल दूसरे व्यक्ति की कीमत पर अपनी स्थिति में सुधार कर सकता है। यही तथाकथित परेतो इष्टतमता (Optimality) है जब संसाधनों को इस तरह से आवंटित किया जाता है कि एक व्यक्ति की कीमत पर ही दूसरे व्यक्ति की स्थिति को बेहतर करना सम्भव हो पाता है।

जब बाकी सब कुछ समान होने पर एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर एक उपभोक्ता की क्या प्रतिक्रिया होती है? पूरक और स्थानापन्न वस्तुओं के बारे में चर्चा करते हुए हम पहले ही इस प्रश्न पर विचार कर चुके हैं। लेकिन हम यहाँ विश्लेषण को कुछ हद तक और गहन करते हैं जिससे पाठकों को अर्थशास्त्रियों की प्रयोगशाला में एक बार फिर से झाँकने का मौका मिलेगा और वे देख सकेंगे कि उन्होंने अपनी विचाराधीन अवधारणाओं को कैसे व्यापक और परिष्कृत किया।

उनके विचार प्रयोग बाकी सभी कारक समान रहने की धारणा से शुरू हुए। इसके आधार पर उन्होंने 'माँग फलन' का निर्माण किया। माँगफलन वस्तु की माँग को, वस्तु की कीमत से संबंधित करता है। विचार प्रयोग में किसी वस्तु की कीमतों में बदलाव किया जाता है जबकि अन्य सभी वस्तुओं और मजदूरी, लाभ, किराए आदि की कीमतें दी जाती हैं और उन्हें स्थिर मान लिया जाता है। इसके बाद एक काल्पनिक उपभोक्ता से उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए उसकी वरीयताओं के आधार पर "पूछा" जाता है कि कीमत में बदलाव के साथ उसके लिए उस वस्तु की माँग में किस तरह से परिवर्तन होता है। अर्थशास्त्री इन " उत्तरों " को एक आरेख में चित्रित करते हैं।

आय और प्रतिस्थापन प्रभाव - जिन्हें हम सामान्य वस्तुएँ कहते हैं, उनके मामले में कीमत गिरने पर माँग बढ़ती है और कीमत बढ़ने पर माँग घटती है। लेकिन जरूरी नहीं कि यह हर वस्तु के लिए और हर मूल्य परिवर्तन के मामले में लागू होता है। जैसा कि रूसी अर्थशास्त्री यूजीन स्लुत्सकी(1880 - 1948) और बाद में जॉन हिक्स ने दिखाया कि एक वस्तु की कीमत में बाकी सभी चीजों के अपरिवर्तित या स्थिर रहने पर होनेवाले परिवर्तन के प्रभाव को दो आंशिक प्रभावों में बाँटा जा सकता है। हम उस मामले के तर्क का उदाहरण देते हैं जिसमें वस्तु की कीमत में वृद्धि की जाती है। जाहिर है कि यह वस्तु को अन्य सभी वस्तुओं की तुलना में अधिक महंगा बना देता है, जो उपभोक्ता के लिए उस वस्तु की उपयोगिता के आधार पर इस वस्तु की कम माँग और एक या कई अन्य वस्तुओं की बढ़ती माँग की ओर ले जाता है। यह "प्रतिस्थापन प्रभाव" है। दूसरी ओर, वस्तु की कीमत में वृद्धि का अर्थ यह भी है- वास्तविक आय में कमी उपभोक्ता अब पहले की तुलना में कम खर्च कर सकता है। उपभोक्ता के लिए उस वस्तु के महत्त्व के आधार पर इसकी माँग घटेगी या बढ़ेगी। यह आय प्रभाव है।

इस तरह दोनों प्रभावों का जोड़ बताता है कि किसी व्यक्ति की माँग मूल्य में बढ़ोतरी पर कैसे प्रतिक्रिया करती है। जैसा कि यहाँ परिभाषित किया गया है, प्रतिस्थापन प्रभाव, हमेशा नकारात्मक होता है जबकि आय प्रभाव या तो नकारात्मक या सकारात्मक होता है। आम वस्तुओं के मामले में यह नकारात्मक है - आय में कमी के साथ वस्तु की माँग में कमी आती है (और आय में वृद्धि के साथ यह बढ़ जाती है) - जबकि कथित गौण वस्तुओं के मामले में आय प्रभाव सकारात्मक होता है: आय में कमी के साथ ऐसे सामानों की माँग बढ़ जाती है। गौण वस्तुएँ- माल वह वस्तुएँ हैं जिनको बढ़ती आय के साथ, उच्च अनुमानित वस्तुओं द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है, उदाहरण के लिए, आलू को माँस द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है और आय में कमी के साथ इसके विपरीत भी होता है। एक चरम मामला 'गिफेन वस्तुओं' का है जिनका नामकरण स्कॉटिश सांख्यिकीविद रॉबर्ट गिफेन (1837-1910) के नाम पर किया गया है, जिनकी माँग इनकी कीमत में वृद्धि पर बढ़ जाती है। समग्र प्रभाव को अलग-अलग करके इसे समझने की कोशिश करें तो अब हम कह सकते हैं कि एक गिफेन वस्तु एक गौण या कम महत्त्वपूर्ण वस्तु है जिसके लिए आय प्रभाव सकारात्मक है और वह प्रतिस्थापन प्रभाव पर हावी है, जो कि नकारात्मक है।

लोककल्याणकारी अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धान्त परेतो का वस्तुओं की माँग का सिद्धान्त उनके सामान्य सन्तुलन के सिद्धान्त और उनके कल्याण सिद्धान्त की आधारशिला है। सामान्य सन्तुलन सिद्धान्त आमतौर पर डाटा या प्रदत्त या स्वतंत्र चर के 3 सेटों से शुरू होता है (अध्याय 4

देखें) : (1) एजेन्टों की पसन्द (2) विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के लिए दिए गए तकनीकी विकल्प; और (3) उत्पादक कारकों की अर्थव्यवस्था की प्रारम्भिक निधि और एजेन्टों को दिए गए सम्पत्ति अधिकार। परेतो ने दिखाया कि कुछ प्रतिबन्धात्मक पूर्वधारणाओं विशेष रुप से उत्पादन प्रौद्योगिकी और वरीयता के तहत, एक बाज़ार सन्तुलन मौजूद है जो परेतो इष्टतम है। पॉल ए सैमुअल्सन ने इस परिणाम को " लोककल्याणकारी अर्थशास्त्र का पहला मौलिक प्रमेय" कहा। परेतो ने यह भी दिखाया कि एजेन्टों के बीच प्रारम्भिक निधि को पुनर्रवितरित करके कोई भी (संभाव्य) सन्तुलन और इसके साथ साथ किसी भी (संभाव्य) परेतो इष्टतम को हासिल किया जा सकता है। सैमुअल्सन इसे "लोककल्याणकारी अर्थशास्त्र के दूसरे मौलिक प्रमेय" के रूप में देखते हैं।

क्रमिक उपयोगिता सिद्धान्त के ढाँचे के भीतर विकसित इन दो प्रमेयों ने आय की गिरती सीमान्त उपयोगिता के आधार पर आय (और धन) के पुनर्वितरण की चर्चा को प्रतिस्थापित कर दिया और यह गणनावाचक फ्रेमवर्क के भीतर से आया जैसा कि हमने एजवर्थ के काम में देखा था (और आर्थर सेसिल पिगौ के बारे में इस खण्ड में आगे फिर से चर्चा करेंगे)। गणना वाचक उपयोगिता सिद्धान्त की तुलना में पारस्परिक तुलना को नकारने के साथ क्रमिक उपयोगिता सिद्धान्त- नाटकीय रूप से समाज के मुकाबले व्यक्ति को विशेष अधिकार देता है। यह कहा जा सकता है कि इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति को सैद्धान्तिक रूप से ऐसे सार्वजनिक निर्णयों को वीटो करने का अधिकार है जो उसके (व्यक्तिपरक) कल्याण को प्रभावित करते हैं। ऐसे में यह कहना लगभग असम्भव-सा लगता है कि क्या स्थिति ए समाज के लिए स्थिति बी से बेहतर है। परिणाम स्वरूप, आर्थिक नीति सामाजिक स्थितियों में सुधार करने में असमर्थ प्रतीत होती है। चूँकि हर नीति विकल्प में कुछ लाभार्थी होंगे और कुछ गंवानेवाले होंगे। ऐसे में, यदि व्यक्तियों के बीच उपयोगिता की तुलना निषिद्ध है, तो कोई व्यक्ति कभी भी पहले वाले के लाभ को बाद वाले के नुकसान के विरुद्ध कैसे आँक सकता है?

कलडोर- हिक्स मुआवजा मानदण्ड निकोलस कालडोर और जॉन हिक्स ने 1939 में प्रकाशित निबन्धों में इस बन्द गली से बाहर निकलने का एक तरीका सुझाया था। कालडोर ने अपने सुझाए गए समाधान के पक्ष में उदाहरण देने के लिए 1846 में अंग्रेजी मकई कानूनों को रद्द करने की मिसाल दी। उन्होंने तर्क दिया कि कानूनों को रद्द करने के बाद विदेशों से सस्ते मकई के आयात के कारण भूमि के किराए में गिरावट आयी जिससे जमींदारों को नुकसान हुआ। मकई की कीमत में गिरावट के कारण रोटी की कीमतें कम हुईं और उपभोक्ताओं को लाभ हुआ। (रिकार्डो पहले ही मकई कानूनों का विरोध कर चुका था। उन्होंने तर्क दिया था कि इन कानूनों को रद्द करने से मुनाफ़े की

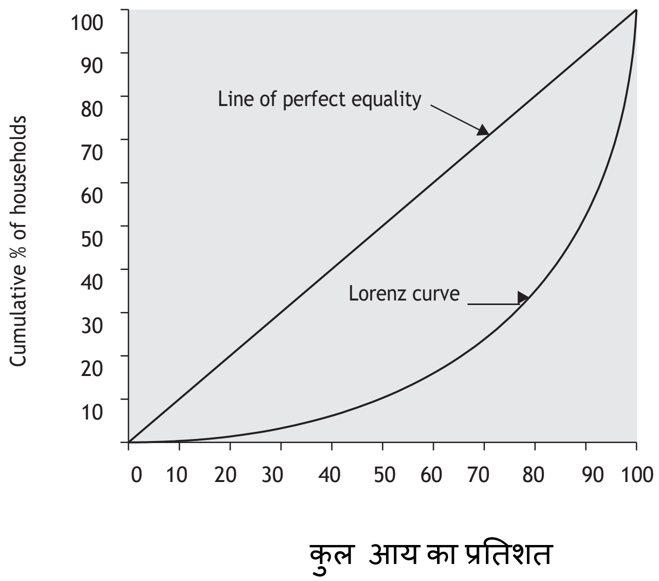
सामान्य दर में वृद्धि के कारण सबसे पहले और सबसे महत्त्वपूर्ण पूँजीपतियों को लाभ होगा और परिणाम स्वरूप पूँजी संचय और विकास की दर में वृद्धि के कारण बड़े पैमाने पर समाज को लाभ होगा।) यदि उसूलन (अर्थात, सिद्धान्त रूप में) कानून रद्द करने से जिन्हें लाभ होता है, वे नुकसान उठानेवालों की क्षतिपूर्ति कर सकते हैं और फिर भी बेहतर स्थिति में रह सकते हैं तो कानून को रद्द करना समाज के लिए वांछनीय है। उन्हें वास्तव में, मुआवज़ा देने की आवश्यकता नहीं है। कालडोर- हिक्स का मुआवज़ा मानदण्ड, मुआवजा भुगतान की अमूर्त सम्भावना पर ध्यान केन्द्रित करता है। इस तरह परेतो सुधार एक ऐसी नीति का परिणाम है जिसमें किसी की भी स्थिति बदतर नहीं होती है और कुछ लोगों की स्थिति पहले से बेहतर होती है। इस अवधारणा की पृष्ठभूमि में, कालडोर-हिक्स मानदण्ड ने हमें यह बताता है कि क्या किसी नीति विकल्प में सम्भावित परेतो सुधार शामिल है।

कालडोर- हिक्स मानदण्ड ने एक बहस की शुरुआत की जिसमें हंगरी में जन्मे अमेरिकी अर्थशास्त्री टिबर स्किटोवस्की (1910 -2002) और पॉल सैमुअल्सन ने भागीदारी की और उन्होंने मुआवज़े के विभिन्न मापदण्ड प्रस्तावित किए। पता यह चला कि बिना माल या वस्तुओं की स्थिर कीमतों और उन्हीं समान उपभोक्ताओं और उनकी विशेष प्राथमिकताओं के मुआवजे के सभी मापदण्डों का प्रदर्शन खराब रहा। (हम संक्षेप में अध्याय 2 में लोककल्याण सिद्धान्त पर फिर वापस लौटेंगे।)

व्यक्तिगत आय वितरण और लोरेंज वक्र परेतो ने आय के व्यक्तिगत वितरण के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण अनुभवजन्य निष्कर्षों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया जो व्यक्तियों और परिवारों के बीच आय के वितरण के बारे में है, चाहे उनके स्रोत कुछ भी हों (मजदूरी, लाभ ,किराया, ब्याज आदि) : इसे "परेतो का सिद्धान्त" कहते हैं, जो 80-20 नियम के रूप में भी जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, आबादी के 20 प्रतिशत हिस्से को 80 प्रतिशत आय प्राप्त होती है, और फिर आबादी के इस 20 प्रतिशत के अन्दर के 20 प्रतिशत के पास आय के 80 फीसदी के अन्दर का 80 फीसदी आय चली जाती है। यह प्रक्रिया ऐसे ही जारी रहती है। इससे जाहिर है कि आय बहुत असमान रूप से वितरित की जाती है। समय के साथ आय वितरण की असमानता किसी देश/ देशों में और दुनिया भर में घट सकती है या बढ़ भी सकती है। हाल के वर्षों में वैश्विक स्तर पर देशों के बीच असमानता कम हुई है क्योंकि चीन या भारत जैसे बड़ी आबादी वाले देशों में तेजी से आर्थिक विकास हुआ है लेकिन कई देशों के अन्दर असमानता तेजी से बढ़ी है।

सम्पत्ति, उपभोग, ऊर्जा के उपयोग आदि के बारे में भी ऐसा ही देखा जा सकता है। यदि किसी डायाग्राम के एक अक्ष पर जनसंख्या का हिस्सा (0 से 1 तक) और दूसरे अक्ष पर राष्ट्रीय आय का

हिस्सा (0 से 1) दिखाते हैं तो इससे अनुभवजन्य मूल्य सामने आता है (x% जनसंख्या y% आय प्राप्त करती है), यही लोरेंज़ वक्र है जो कि एक अमेरिकी सांख्यिकीविद मैक्स ऑटो लोरेंज़ (1876-1959) के नाम पर है (चित्र 6.2)। यदि आय समान रूप से वितरित होती है तो (0,0) और (1,1) बिन्दुओं को जोड़ने वाली एक सीधी रेखा बनेगी। वक्र का मोड़ जितना अधिक होगा, वितरण की असमानता उतनी ही अधिक होगी।



चित्र 6.2 लॉरेंज वक्र

इतालवी सांख्यिकीविद कोराडो गिनी (1884- 1965) के नाम पर रखा गया गिनी गुणांक (0 और 1 के बीच) लॉरेंज वक्र के उस सीधी रेखा से विचलन के मापन का एक उपाय है जो आय के समान वितरण को इंगित करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन जैसे देश अपेक्षाकृत उच्च (और बढ़ते) गिनी गुणांक प्रदर्शित करते हैं जोकि 0.6 से अधिक है जबकि यूरोपीय देश और विशेष रूप से स्कैंडिनेवियाई देशों के लिए यह गुणांक काफी कम है। आय और सम्पत्ति वितरण पर प्रमुख शोध ब्रिटिश अर्थशास्त्री एंथनी बी. एटकिंसन (1944) और फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थॉमस पिकेटी (1971) के काम के कारण सम्भव हुआ है। 2014 में अंग्रेजी में प्रकाशित अपनी पुस्तक "21वीं सदी में पूँजी" में पिकेटी का तर्क है कि अमीरों और उससे अधिक सुपर अमीरों के पक्ष में आय और सम्पत्ति का पुनर्वितरण उस नींव को और भी अधिक कमजोर करता है, जिस पर पश्चिमी समाज खड़े हैं- वह यह विश्वास है कि किसी व्यक्ति की आर्थिक और सामाजिक सफलता के लिए केवल उसकी कड़ी मेहनत

और उच्च उत्पादकता ही मायने रखते हैं। यह एक प्रतिभावादी समाज का आदर्श है जिसमें यह अमेरिकी सपना दिखाया जाता है जिसके मुताबिक, सिद्धान्तः हर कोई "यह करके दिखा सकता है" यानी कहावती रूप में कहें तो एक बर्तन धोने वाले से एक अरबपति बनने तक की राह तय कर सकता है। यह सोच यह मानकर चलती है कि सामाजिक उन्नति के अवसर बरकरार हैं और विभिन्न सामाजिक स्तरों के बीच पारगम्यता है। हालांकि इसके कुछ चरम उदाहरण मिल जाते हैं लेकिन वे अपेक्षाकृत कम हैं। परेतो के अनुभवजन्य शोध ने पहले ही स्थापित कर दिया था कि कुलीनों का प्रचलन कम है। पिकेटी की किताब इस बात की पुष्टि करती है और एक अपेक्षाकृत प्रतिभावादी समाज से धीरे-धीरे अधिक-से-अधिक वंशानुगत समाज की ओर खिसकने के खतरे के बाबत इशारा करती है, जिसमें मुख्य रुप से यह मायने रखता है कि कोई व्यक्ति कितने धनी परिवार में जन्म लेता है या शादी करता है न कि वह व्यक्ति कितना मेहनती या उत्पादक है। इसलिए पिकेटी और एटकिंसन एक बार फिर अर्ध- सामन्ती दौर में वापसी से बचने और युवाओं के लिए समान अवसरों को सुरक्षित करने के वास्ते आमतौर पर उत्तराधिकार और सम्पत्ति पर कर लगाने की वकालत करते हैं।

मैं यह कह कर अपनी बात समाप्त करूँगा कि परेतो को होमो इकॉनामिक्स (अर्थशास्त्र में एक काल्पनिक व्यक्ति की अवधारणा जिसके बारे में माना जाता है कि वह अपने तार्किक स्व-हित के मुताबिक ही व्यवहार करेगा) के काल्पनिक चरित्र और उस कृत्रिम चरित्र पर आधारित सन्तुलन के सिद्धान्त की सीमा के बारे में पता था। उसका मानना था कि केवल अर्थशास्त्र ही सामाजिक परिघटनाओं की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं कर सकता। जीवन के अन्त में उन्होंने समाजशास्त्र की ओर रुख किया और "सामान्य समाजशास्त्र पर ग्रन्थ" (1916) नामक पुस्तक द्वारा इस क्षेत्र में एक उल्लेखनीय शास्त्रीय काम किया।

आर्थर सीसिल पिगौ (1877 -1959) मार्शल के आंशिक सन्तुलन सिद्धान्त के प्रतिनिधि थे और तर्कों के सरलीकरण और नए विचारों ने उन्हें स्थाई सफलता प्रदान की। मार्शल की तरह वह भी लोगों की जीवन स्थितियों में सुधार के लिए सिद्धान्त के व्यवहारिक अनुप्रयोग में सबसे अधिक रुचि रखते थे; इस बारे में विशेष रूप से उनकी पुस्तक " द इकोनॉमिक्स ऑफ वेलफेयर" देखें (1920)। वे गणनावाचक उपयोगिता की अवधारणा और “आय की ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता के नियम” की परेतो द्वारा की गई आलोचना से सहमत नहीं थे। इसलिए, सिद्धान्त रूप में, उन्होंने जिनकी आय कम है उनके पक्ष में आय के पुनर्वितरण की वकालत की लेकिन यह ध्यान रखते हुए कि मार्शल के "अधिक-से-अधिक लोगों के कल्याण " के सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं होना चाहिए: इसका अर्थ यह हुआ कि पुनर्वितरण के लिए तब तक ‘हाँ’ है जब तक कि यह समग्र कल्याण को कम नहीं

करता है। पीगौ के विचारों के परेतो की पहले की स्थिति में वापसी की लन्दन में उनके सहयोगी लियोनेल रॉबिंस ने कड़ी आलोचना की। रॉबिंस ने अपने निबन्ध " आर्थिक विज्ञान की प्रकृति और महत्त्व" (1932) में लोककल्याणकारी सिद्धान्त पर पिगौ के विचारों से अलग एक वैकल्पिक कार्यक्रम विकसित किया। लेकिन यह विचार टिकाऊ साबित हुआ कि आर्थिक दृष्टि से विचार करते हुए सभी मनुष्यों को लगभग बराबर वज़न मिलना चाहिए और आज भी यह वितरणात्मक प्रश्नों, गरीबी की समस्या और अन्तर- पीढ़ीगत न्याय की समस्या पर हो रहे अध्ययनों की एक स्थाई विशेषता है।

आज जिस तरह से सार्वजनिक वित्त को पढ़ाया जाता है, उस पर पिगौ की पुस्तक “सार्वजनिक वित्त में एक अध्ययन" (1928) बड़ा प्रभाव देखा जा सकता है। वह सार्वजनिक वित्त में ' नकारात्मक' और 'सकारात्मक' बाह्यताओं की समस्या से निपटने के लिए सबसे प्रसिद्ध है। नकारात्मक बाह्यता का एक उदाहरण एक ऐसा उत्पादक है जो अपने कारखाने से निकले प्रदूषण को एक नदी में प्रवाहित करता है और इस तरह वहाँ के मछली पकड़ने वाले समुदाय को नुकसान पहुँचाता है; सकारात्मक बाह्यता का उदाहरण एक ऐसा मधुमक्खी पालक होगा जिसकी मधुमक्खियाँ पड़ोसी बागवान के फूलों को परागित करती हैं जिससे फल लगता है और उसे लाभ होता है। दोनों ही मामलों में एक नुकसान या लाभ है जो उनसे असम्बन्धित तीसरे पक्ष को प्रभावित करता है। इस तरह जब मधुमक्खियों के परागण से होने वाले लाभों या पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले नुकसान को उन्हें उत्पन्न करने वाले व्यक्ति पर आरोपित नहीं किया जाता है, तो अर्थशास्त्री लागत या लाभों के आंतरिकीकरण की बात करते हैं। ऐसे में, जब निजी सीमान्त लागत यानी नुकसान और लाभ, सामाजिक सीमान्त लागत और लाभ के बराबर नहीं होते हैं तो संसाधनों के गलत आवंटन और अवांछनीय वितरण प्रभाव सामने आते हैं। निजी और सामाजिक सीमान्त लागत या नुकसान और लाभों की समानता लाने के लिए, पिगौ ने पहले मामले में उत्पादन पर कर (पिगौवियन कर) का प्रस्ताव रखा जिसका मूल्य आम जनता के लिए पड़नेवाली लागत यानी नुकसान के बराबर हो और दूसरे मामले में मधुमक्खीपालक को एक सब्सिडी (पिगौवियन सब्सिडी) देने का प्रस्ताव किया जो आम जनता को होने वाले लाभ के बराबर हो। पिगौ ने गोसेन के सार्वजनिक वित्त के दूसरे नियम को भी लागू किया: प्रयुक्त किए गए संसाधन की अन्तिम इकाई की सामाजिक उपयोगिता हर दिशा में, चाहे वह निजी हो या सार्वजनिक, समान रूप से बड़ी होनी चाहिए।

पिगौ ने “कराधान की एक इष्टतम प्रणाली” के विचार को पुनर्जीवित किया, जिसकी जड़ें आर्थिक विचारों के इतिहास में बहुत पहले से ही देखी जा सकती हैं। उनके सुझाव पर, कैंब्रिज के उनके युवा

सहयोगी फ्रैंक प्लंपटन रामसे (1903 -1930) जो खुद एक शानदार दार्शनिक और गणितज्ञ थे- ने इष्टतम कराधान का एक गणितीय मॉडल विकसित किया जो इस विषय पर व्यापक साहित्य के लिए प्रस्थान का बिन्दु बना।

अपनी पुस्तक 'बेरोजगारी के सिद्धान्त' (1933) में पिगौ ने तर्क दिया कि आदर्श प्रतिस्पर्धा की स्थितियों के तहत सभी बाज़ार (श्रम बाज़ार सहित) माँग और आपूर्ति के बीच सन्तुलन होने की ओर अग्रसर होते हैं। उन्होंने इसका एक कारण यह बताया कि मंदी में, मूल्य स्तर में गिरावट के कारण (बाहरी) पैसे का वास्तविक मूल्य बढ़ जाता है जो खपत (तथाकथित पिगौ प्रभाव) को बढ़ाता है। ('बाहरी पैसा' वह पैसा है जो अर्थ व्यवस्था के भीतर किसी के लिए देयता नहीं होती है; केन्द्रीय बैंकों द्वारा जारी किए गए पैसे को आमतौर पर बाहरी पैसे के रूप में माना जाता है।) अपनी पुस्तक "सामान्य सिद्धान्त"(1936) में कींस ने विश्व आर्थिक संकट और बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी के मद्देनज़र पिगौ के दृष्टिकोण को खारिज कर दिया लेकिन ऐसा करते हुए भी उन्होंने पिगौ के विश्लेषण को इस तरह से प्रस्तुत किया जिससे उनके महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति हुई। निश्चित रूप से पिगौ गिरती कीमतों और मजदूरी के माध्यम से रोजगार के उच्च स्तर को प्राप्त करने का प्रयास करने वाली अपस्फीति नीति का समर्थक नहीं था। यह भी उल्लेखनीय है कि पिगौ के फॉर्मूलेशन या विचारों में कई ऐसे थे जो समष्टि आर्थिकी में आनेवाले विचारों का पूर्वाभास कराते हैं, हालांकि वे स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किए गए थे। इसका एक उदाहरण गुणांक की अवधारणा है जिससे रिचर्ड कान (1905 - 1989) ने पेश किया और जिसे फिर कींस ने अपनाया (अध्याय 10 देखें)।

पूँजीवाद या समाजवाद? यह प्रश्न बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सामने आया जिसे " व्यवस्था सम्बन्धी महान वाद-विवाद" कहा जाता है। यह दो ऐतिहासिक प्रवृत्तियों से प्रेरित था। पहला, पूँजीवादी देशों में पूँजी का संकेन्द्रण बढ़ा और विशाल ट्रस्टों और एकाधिकारों का गठन हुआ, जिसने बड़े पैमाने पर पारिवारिक स्वामित्व वाली फर्मों पर आधारित प्रतिस्पर्धी पूँजीवाद की जगह ले ली थी। जैसे-जैसे इन फर्मों ने आर्थिक और राजनीतिक शक्ति अर्जित की, यह और अधिक स्पष्ट होता गया कि प्रतिस्पर्द्धा की वह आदर्श स्थिति जिसमें किसी आर्थिक एजेण्ट के पास बाज़ार पर कब्ज़े की स्थिति नहीं रहती है, के उलट सीमान्तवादी अर्थशास्त्र के ज्यादातर हाड़तोड़ मेहनत करनेवाले इस नई उभरती स्थिति में टिके रहने में सक्षम नहीं हैं । दूसरा,1917 की रूसी क्रान्ति, सोवियत संघ की स्थापना, और यूरोप और उसके बाहर समाजवादी पार्टियों की बढ़ती ताकत के साथ धीरे-धीरे पूँजी वाद के विकल्प की रूपरेखा आकार लेने लगी। इसके समर्थकों के अनुसार, इस नई सामाजिक अर्थव्यवस्था ने पूँजीवाद के अन्याय और कमियों को दूर किया और लोगों के शोषण, आर्थिक संकटों

और साम्राज्यवादी युद्धों के बिना एक नई दुनिया का मार्ग प्रशस्त किया। निस्सन्देह, अब अर्थशास्त्रियों को इन चुनौतियों पर अपनी राय बनानी थी।

यहाँ हम संक्षेप में वैकल्पिक आर्थिक प्रणालियों और जैसा कि उस समय देखा गया, उनके सम्बन्धित गुण और दोषों के बारे में हुई बहस पर चर्चा करेंगे। अध्याय 7 पूर्ण प्रतिस्पर्धा के अलावा अन्य तरह के बाज़ारों पर समझ बनाने के प्रयासों पर संक्षेप में चर्चा के लिए समर्पित है।

यहाँ ध्यान देनेवाली दिलचस्प बात यह है कि समाजवादी चुनौती के सामने कई अर्थशास्त्रियों ने पूँजीवादी व्यवस्था के अपने बचाव और अध्ययन को और मजबूत करके प्रतिक्रिया व्यक्त की, लेकिन उनका जोर पूर्ण या आदर्श प्रतिस्पर्धा के तहत स्थिर कार्यक्षमता की विशेषता वाली उस अर्थव्यवस्था पर बना रहा। बीसवीं सदी की शुरुआत में अर्थशास्त्री इस तरह की सोच में कितने डूबे हुए थे, यह इस तथ्य से भी परिलक्षित होता है कि समाजवादी विकल्प के कई पैरोकारों ने भी पूर्ण प्रतिस्पर्धा के मामले को आदर्श स्थिति के रूप में देखा। वे समकालीन पूँजीवाद के पैरोकारों से केवल इस हद तक भिन्न थे कि उन्होंने (1) ज़ोर देकर कहा कि पूँजीवाद मूल रूप से उस आदर्श स्थिति से अलग है और (2) उनके द्वारा कल्पित समाजवाद ने सामाजिक संस्थाओं और नीतियों के विवेकपूर्ण चुनाव के माध्यम से उस आदर्श स्थिति की ओर वापस जाने का रास्ता दिखाया है। बिना बढ़ाए-चढ़ाए यह कहा जा सकता है कि इस सोच में समाजवाद को उत्पादन के साधनों में निजी सम्पत्ति के बिना प्रतिस्पर्धी पूँजीवाद के गुणों की नक़ल करता हुआ डिज़ाइन किया गया था।

हालांकि कुछ अर्थशास्त्रियों ने जोर देकर कहा कि इस तरह से पूँजीवाद की रक्षा के साथ-साथ समाजवाद की वकालत दोनों में बहुत दम नहीं है, क्योंकि वे एक समान दोष से ग्रस्त हैं : वे पूँजीवाद के अत्यधिक भ्रामक दृष्टिकोण से शुरू होते हैं। जैसा कि जोसेफ ए शूम्पीटर ने अपनी पुस्तक "आर्थिक विकास के सिद्धान्त" (पहली बार 1912 में जर्मनी में प्रकाशित) में स्पष्ट किया कि पूर्ण प्रतियोगिता के तहत स्थिर कार्यक्षमता की सोच जिनके इर्द-गिर्द इस विवाद में दोनों पक्षों के तर्क घूमते थे, वह पूँजीवादी व्यवस्था की कार्यप्रणाली को समझने के लिए बहुत कम महत्त्वपूर्ण थे (इसके उज्ज्वल और अन्धेरे दोनों पक्षों के साथ)। शूम्पीटर ने जोर देकर कहा कि पूँजीवाद की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ इसकी अन्तर्निहित गतिशीलता और बेचैनी और इस व्यवस्था की उत्पादकता के स्तर और मालों/वस्तुओं की विविधता को बढ़ाने के लिए प्रेरित करने की क्षमता थी। शूम्पीटर जो मार्क्सवादी नहीं थे, उन्होंने इस सम्बन्ध में स्वीकार किया कि उन्हें मार्क्स के दृष्टिकोण से बहुत लाभ हुआ (अध्याय 8 में यह और अधिक स्पष्ट होगा)।

"बाज़ार समाजवाद" आइए, अब हम समाजवाद के बारे में बहस पर संक्षेप में चर्चा करते हैं जिसे "समाजवादी गणना बहस" के रूप में भी जाना जाता है। परेतो के अनुसार, सिद्धान्त रूप में, समाजवाद में दुर्लभ संसाधनों के कुशल आवंटन की कल्पना की जा सकती है। हालांकि, उन्हें सन्देह था कि यह बाजारों के बिना सम्भव हो पाएगा- उदाहरण के लिए, बढ़ती कीमतों के संकेत के बिना कोई किसी वस्तु की कमी कैसे पहचानेगा? परेतो ने तर्क दिया कि कीमतों के ज़रिए मिलनेवाले संकेतन के बिना एक नियोजित अर्थव्यवस्था सिर्फ़ अन्धेरे में हाथ-पैर मारती रहेगी। यह मजदूरी, वेतन, किराए और ब्याज आदि को तय करने के लिए भी लागू होता है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यदि आय और काम के प्रदर्शन को अलग कर दिया जाता है तो एक प्रोत्साहन की समस्या पैदा होती है : यदि वह उचित रूप से पुरस्कृत नहीं होता है तो किसी को कड़ी मेहनत और प्रयास क्यों करना चाहिए? 1908 में पहली बार इतालवी में प्रकाशित एक शोधपत्र में और फिर "एक सामूहिक राज्य में उत्पादन मंत्रालय" के अंग्रेज़ी अनुवाद में, इतालवी अर्थशास्त्री एनरिको बैरोन (1859- 1924) ने परेतो के कुछ विचारों को उठाया और यह सिद्धान्त दिया कि एक समाजवादी अर्थव्यवस्था कार्यसक्षम हो सकती है यदि वह स्थिर कार्यक्षमता की शर्तों को काल्पनिक "उत्पादन मंत्रालय" का मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाती है। समाजवादी अर्थव्यवस्था के उनके गणितीय मॉडल में कीमतों को "अधिकतम सामूहिक कल्याण" के लक्ष्य को हासिल करने के लिए वस्तुओं और संसाधनों की सापेक्ष कमी को प्रतिबिम्बित करना चाहिए। बैरोन इस बारे में स्पष्ट थे कि पहले यह पता लगाना और फिर ऐसी स्थिति लाना मुश्किल था क्योंकि इतनी बड़ी मात्रा में डाटा एकत्र करना होगा और डाटा को संसाधित करने के लिए आवश्यक विशाल कंप्यूटिंग क्षमता की आवश्यकता होगी। फिर भी उनके प्रकाशन के बाद के दशकों में इन दोनों मामले में हुई प्रभावशाली प्रगति ने समस्याओं को ऐसा बना दिया जैसे कि उन्हें अन्ततः बेहतरी के लिए प्रबन्धित किया जा सकता है।

लुडविग वॉन मिसज ने 1920 में प्रकाशित एक शोधपत्र में और जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद 1935 में "समाजवादी कॉमनवेल्थ में आर्थिक गणना" नाम से छपा, उसमें इस विचार का विरोध करते हुए कहा कि आर्थिक कार्यक्षमता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता एक दूसरे से अटूट रूप से जुड़ी हुई हैं- बाज़ार से तय कीमतों के बिना कोई तर्कसंगत योजना नहीं हो सकती। समस्या केवल डेटा या कंप्यूटिंग क्षमता की कमी नहीं थी बल्कि ज्यादा गहरी थी। उन्होंने यहाँ तक तर्क दिया कि सभी मानवीय तर्कसंगतता आर्थिक जीवन से उत्पन्न होती है और इसे विकसित करने के लिए बाज़ारों के माध्यम की आवश्यकता होती है।

पोलिश अर्थशास्त्री ओस्कार लांगे (1904- 1965), जिन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका में पढ़ाया था, ने 1936 और 1937 में दो क़िस्तों में प्रकाशित" समाजवाद के आर्थिक सिद्धान्त के बाबत" शीर्षक वाले एक शोधपत्र में मिसज को इसका जवाब दिया। उनके विचार में प्रतिस्पर्धी पूँजीवाद और समाजवाद के बीच का विकल्प अब वास्तव में मौजूद नहीं रह गया था, क्योंकि प्रतिस्पर्द्धी पूँजीवाद बहुत पहले से समाप्त हो गया था। लांगे ने कहा कि पूँजीवाद की कार्यक्षमता के गुणों को केवल विकेन्द्रीकृत या "बाज़ार समाजवाद" के ढाँचे के भीतर ही बहाल किया जा सकता है। इस व्यवस्था में केंद्रीय नियोजन प्राधिकरण कीमतें तय करता है। यदि दी गई कीमतों पर बाज़ार में अधिक आपूर्ति होती है तो आगामी अवधि के लिए कीमत कम हो जाती है; इसी तरह माँग अधिक होने पर इसे बढ़ाया जाता है। जाँचो और ठीक करो की एक प्रक्रिया के माध्यम से जो वालरस के पुनरावृत्त नीलामी तंत्र को ध्यान में लाता है कि कीमतों को धीरे धीरे बाज़ार स्तर की दिशा में ले जाया जाता है। इस तरह बाज़ार समाजवाद को उपभोग और उत्पादन में कार्यनिष्पत्ति हासिल करने के एक सफल तरीके के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

अमेरिकी अर्थशास्त्री अब्बा पी लर्नर (1905- 1982) ने बाज़ार समाजवाद के बाबत परेतो इष्टमता पर विशेष ध्यान देते हुए इस चर्चा को जारी रखा। उस समय इस तर्क को एक व्यापक सहमति मिल चुकी थी - उसमें सोवियत युद्ध अर्थव्यवस्था की सफलता और युद्ध के बाद आर्थिक विकास के अपने उल्लेखनीय रिकॉर्ड की भूमिका कम नहीं थी। लेकिन खासतौर पर “आस्ट्रियाई” अर्थशास्त्री जिनके तर्क आधी-अधूरी जानकारी और ज्ञान की भूमिका और आर्थिक प्रक्रिया में अनिश्चितता के इर्द-गिर्द घूमती है, इससे प्रभावित नहीं हुए।

अन्वेषण पद्धति के रूप में बाज़ार प्रक्रिया अपने आस्ट्रियाई साथी मिसज के विचार का फ्रीडरिक अगस्त वॉन हायक ने समाज में ज्ञान की भूमिका के बारे में लिखे अपने कई लेखों में समर्थन किया जिसमें "दासत्व का मार्ग"(1944) और दूसरे कई निबन्ध शामिल हैं। हायक ने बाज़ार प्रक्रिया के दो महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला : पहला, समष्टिगत आर्थिक कार्यों के लिए प्रोत्साहन जो बाज़ार से आता है और दूसरा, वे सूचनाएँ जो बाज़ार से पैदा होती हैं। व्यक्तियों के बीच स्वत: होनेवाली क्रियाओं के परिणाम के रूप में कीमतें जो सूचना की वाहक हैं। खंडित और बिखरी हुई जानकारियाँ जो केवल निजी तौर पर उपलब्ध हैं, आमतौर पर कीमतों के रूप में उन्हें एक साथ इकठ्ठा करके उपलब्ध कराया जाता है। हायक ने ज़ोर देकर कहा कि न ही कोई केन्द्रीय नियोजन कार्यालय और ना ही कोई नौकरशाही बाज़ार की तरह प्रभावी ढंग से जानकारी एकत्र, और संसाधित करके मुहैया करा सकती है। इसलिए बाज़ार में एक “अन्वेषण पद्धति” शामिल है। हायेक

ने मिसज के इस तर्क को भी दोहराया कि आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई हैं।

एक "तीसरा रास्ता"? व्यवस्थागत बहस से पहले और उसके साथ ही विशेष रुप से जर्मन भाषी देशों में एक नई आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के बारे में एक गहन चर्चा जारी थी जोकि पूँजीवाद और समाजवाद से परे - एक "तीसरा रास्ता" के बारे में थी। यह प्रथम विश्वयुद्ध में (1914 -1918), केन्द्रीय शक्तियों की हार और युद्ध के कारण हुई उथल-पुथल (और सम्बन्धित आर्थिक और सामाजिक तकलीफों) से शुरू हुई थी। जर्मन समाजीकरण आयोग के सदस्य एमिल लेडरर (1882 - 1939) ने हिल्फरडिंग, शूम्पीटर और अन्य लोगों के साथ प्रमुख उद्योगों (कोयला, लोहा, इस्पात) के समाजीकरण की वकालत की और अर्थव्यवस्था को स्थिर करने और आय के कम असमान वितरण को सुनिश्चित करने के साधन के रूप में एक सरकारी योजना ढाँचे की स्थापना का समर्थन किया। ओटो न्यूरथ (1882- 1945) ने तर्क दिया कि केन्द्रीय योजना को कीमतों की आवश्यकता नहीं है बल्कि युद्ध अर्थव्यवस्था के दौरान उपयोग में लाई गई गणना से काम चल सकता है। कॉर्ल लैंडआउर (1891- 1983) ने अर्थव्यवस्था के समाजवादी रूपों में संगठन को क्रमिक परिवर्तन के जरिए आगे बढ़ाने पर बल दिया और उम्मीद की कि इससे आर्थिक तर्कसंगतता और कार्यक्षमता में तेजी से वृद्धि होगी। धार्मिक समाजवादी एडुआर्ड हेमैन (1889- 1967) ने समुदाय को व्यक्ति से ऊपर रखा और व्यवस्था को बदलने के लिए सामाजिक कल्याण नीति की शक्ति में विश्वास जाहिर किया। लांगे से एक दशक पहले ही उन्होंने बाज़ार समाजवाद की अवधारणा की वकालत की थी।

इनमें से कुछ विचारों ने राजनीतिक दलों, विशेष रूप से सामाजिक लोकतांत्रिक पार्टी (एसडीपी) और क्रिश्चियन लोकतांत्रिक संघ (सीडीयू) के जरिए अपना रास्ता खोज लिया लेकिन 1933 में हिटलर के नेतृत्व में राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन वर्कर्स पार्टी (NSDAP) के सत्ता में आने के साथ उन्होंने अपना प्रभाव खो दिया। नाज़ी काल (1933- 1945) के दौरान जर्मनी और उसके सहयोगियों द्वारा महाद्वीपीय यूरोप के बड़े हिस्से पर विजय के बाद पैदा हुई विपरीत परिस्थितियों में सैकड़ों ज्यादातर जर्मन भाषी अर्थशास्त्री और अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिकों को नस्लीय और राजनीतिक कारणों से जर्मनी से भागने के लिए मजबूर होना पड़ा क्योंकि यदि उन्होंने सही समय पर ऐसा नहीं किया होता तो उन्हें बन्दी शिविरों में भेजे जाने का जोखिम था। इसके परिणाम स्वरूप जर्मनी, ऑस्ट्रिया और नाज़ी क़ब्जे वाले देशों से जबरदस्त प्रतिभा पलायन हुआ – और उन देशों को प्रतिभा लाभ हुआ जिन्होंने उन प्रवासी विद्वानों को स्वीकार किया विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन और उदाहरण के लिए तुर्की भी। रॉकफेलर फ़ाउण्डेशन ने कई ऐसे विद्वानों की विदेशों में पद पाने में

मदद की जिन्हें उनके विश्वविद्यालयों से बर्खास्त कर दिया गया था और न्यूयॉर्क शहर में सामाजिक अनुसन्धान के लिए नए स्कूल का समर्थन किया जिसका ग्रैजुएट स्कूल 1933 में "निर्वासन में विश्वविद्यालय" के रूप में अपने अध्यक्ष एल्विन जॉनसन (1874- 1971) की अगुवाई में शुरू हुआ ताकि नाजियों की प्रताड़ना से बचने के लिए भागे विद्वानों को एक आश्रय प्रदान किया जा सके।

जर्मनी, ऑस्ट्रिया और अन्य यूरोपीय देशों में बौद्धिक जीवन और सामाजिक विज्ञान की द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ही वापसी हो पाई। लेकिन हिटलर और उसके साथियों द्वारा किए गए नुकसान ने पेशे पर एक स्थाई दाग लगा दिया और अकादमिक परिदृश्य को मौलिक रूप से बदल दिया जिसमें अमेरिकी विश्वविद्यालयों ने अर्थशास्त्र और सम्बन्धित विषयों में तेजी से बढ़त बना ली।

पूँजीवाद के विकल्प की खोज और इसमें सुधार और इसे काबू में करने के तरीकों की खोज अभी समाप्त नहीं हुई है - उदाहरण के लिए अमेरिकी अर्थशास्त्री जॉन रोमर (1945) और जोसेफ़ स्टिगलिट्ज़ के कामों को देखें। वित्तीय बाज़ारों और बैंकिंग क्षेत्र के हालिया संकट के साथ-साथ उस संकट के वास्तविक अर्थव्यवस्था पर शक्तिशाली प्रभावों ने एक ऐसी दुनिया के अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए और सवाल उठाए हैं, जो अधिक स्थिर और अधिक न्याय पूर्ण हो।